डा0 ऋचा सिंह
एसोसिएट प्रो0
हिन्दी विभाग
हरिश्चन्द्र स्ना0 महा0 वाराणसी

लिपि का स्वरूप

यह निर्विवाद सत्य है कि भाषा के विकास के बाद लिपि का विकास हुआ। प्रारम्भ में मानव को आज जैसी सुविधाएँ प्राप्त नहीं थी। फिर भी उसे जैसे–जैसे अपने भावों और विचारों को सुरक्षित रखनें अथवा स्थिर बनानें बनानें की आवश्यकता महसूस हुई वह कुछ न कुछ आविष्कार करता रहा बहुत कुछ क्षेत्रों में उसे सफलता मिली। लिपि ने उसके मुख से निकली हुई ध्वनि को रुपायित नहीं किया बल्कि विचारों की अभिव्यक्ति को स्थिरता प्रदान की और भावि संतति के लिए अपने मनोभावों को सुरक्षित रखने का प्रयास किया। अतः लिपि लेखन पद्धति की यह अवस्था जिसके द्वारा भाषा को स्थायित्व प्रदान किया जा सकता है। तथा व्यक्त वाणी को सुदीर्ध काल तक सुरक्षित रखा जा सकता है।

जितनी भाषा हमारे जीवन के लिए उपयोगी है। उतना ही उपयोगी लिपि भी है। क्योंकि मानव के विकास में लिपि का योगदान भी सर्वथा स्पृहणीय है।

भाषा और लिपि

'भाषा' उच्चरित ध्वनि–संकेतों के स्वरूप का नाम है। वहॉ लिपि लिखित ध्वनि–संकेतों के स्वरूप को कहते हैं। भाषा काल और स्थान की दृष्टि से सीमाओं में आबद्ध रहती थी। क्योंकि भाषा तभी सुना जा सकता है जब कोई वक्ता हमारे सामने उसका उच्चारण करता है। यह वहीं तक सुना जा सकता है। जहॉ तक वक्ता की आवाज पहुॅच सके। जबकि लिपि काल और स्थान की सीमाओं को तोड़ देती है। वह किसी भी व्यक्ति के लिखित विचारों एवं भावों को पर्याप्त समय तक सुरक्षित रखती है।

भाषा विविध ध्वनियों की समष्टि होती है। जबकि लिपि उन ध्वनियों के चिन्हों, रेखाओं, चित्रों प्रतीकों आदि से सम्पृक्त होती है।

लिपि की उत्पत्ति

भाषा की उत्पत्ति की भॉति लिपि की भी उत्पत्ति विवादास्पद है कोई इसे ईश्वर की देन मानता है। तो कोई इसे आवश्यकता के रूप में जन्मी मानव निर्मित। सत्य यही है कि मनुष्य ने अपनी आवश्यकतानुसार लिपि को स्वयं जन्म दिया। जब–जब व्यक्त भावों, विचारों आदि को सुरक्षित रखने की आवश्यकता मनुष्य को पड़ी, वह प्रयत्न कर लिपि का विकास करता रहा। भाषा लिपि से पहले विकसित हुई भाषा की भाव की अभिव्यक्ति का माध्यम है यहि लिपि को भाषा के पूर्व जन्मा माने तो तो भी प्रारम्भ में भले ही यह भावाभिव्यक्ति का माध्यम रही हो। परन्तु कालान्तर में यह भाषा से जुड गयी वर्तमान लिपियों कि शुरुआत लिपियों कि निश्चय ही चित्रात्मकता से हुई है। यदि लिपि भाषा की अनुवर्ती है तो भाव–भाषा–लिपि विकास रूप सामने आता है।

लिपि का विकास

भाषा के उद्‌भव के बारे में जिस प्रकार प्राचीन मान्यता यह है कि इसे ईश्वर ने बनाया था उसी तरह संसार के अधिकांश धार्मिक व्यक्ति यही मानते हैं कि लिपि का भी ईश्वर या देवता ने ही बनाया है। इसी धारणा के आधार पर भारतीय धार्मिक व्यक्ति ब्रह्मा की कृति मानते है। और इसलिए प्राचीन लिपि को ब्राह्मी के नाम से पुकारते है। ऐसे ही मिश्र निवासी अपनी लिपि का निर्माता थाथ या आइसिस देवता को माने है। बेविलोनियों के निवासियों की धारण है कि नेबो ने लिपि का निर्माण किया था लिपि सम्बन्धि यह विचार अन्धविश्वास पर आधारित है। वास्तविकता यह हैं कि मानव को जब अपनी भाषा में व्यक्त भावों विचारों आदि को सुरक्षित रखनें रखने की आवश्यकता का अनुभव हुआ तभी लिपि का विकास हुआ।

चित्रलिपि

मानवता के प्रारम्भिक काल में मानव को अपने भावों की अभिव्यक्ति के लिए चित्र के अतिरिक्त दूसरा कोई सहारा उपलब्ध नहीं था।

इसके प्रमाण– खुदाई एवं गुफाओं में मिलने वाले विभिन्न चित्र संसार की सभी लिपियों को देखने से भी यही आभास होता है कि लेखन का आरम्भ किसी न किसी प्रकार की चित्र लिपि से ही हुआ होगा। प्रारम्भिक अवस्था में जिन चित्रों का प्रयोग होता था वे सरल एवं स्थूल थे ये चित्र सर्वग्राही तो थे किन्तु इनमें प्रतिकात्मकता का अभाव था। प्रातः काल के लिए उगते हुए सूर्य का चित्र एवं दुख के लिए आंसु बहाती आँखों का चित्र खींच दिया जाता था।

सूत्रलिपि

लिपि के विकास की यह दूसरी कड़ी है। प्रचीन काल में रस्सी और पेड़ों की छाल आदि में गॉव दे दी जाती थी। व्याकरण या दर्शन शास्त्र के सूत्र भी इसी परम्परा की ओर उन्मुख करते हैं। इस लिपि का सबसे उत्तम उदाहरण पीरु की क्वीपू है। इसकी सूत्र लिपि में भिन्न–भिन्न लम्बाइयॉ, मोटाइयॉ तथा रंगो के सूत लटकाकर भाव प्रकट किए जाते थे। कहीं–कहीं गाँठे भी लगायी जाती थी।

प्रतिकात्मक लिपि

लिपि के विकास की यह तीसरी सीढ़ी है। बारात में चलने का निमन्त्रण हल्दी भेजकर, समझौते या आत्मसमर्पण की अभिव्यक्ति, सफेद झण्डा दिखाकर या मृत्यु की सूचना पत्र के एक अंश को फाड़कर हम दूसरों तक पहुॅचाते हैं। ये प्रतीक, प्रतीक लिपि को ही है।

भावमूलक लिपि

भावमूलक लिपि चित्रलिपि का विकसित रूप है। भावलिपि में स्थूल वस्तुओं के अतिरिक्त भावों को भी व्यक्त करते है।

फन्नी लिपि

इस लिपि को क्यूनिफार्म तिकोनी या वाणमुखी नाम से भी सम्बोधित किया जाता है। क्योकि इसमें त्रिभुजाकार, कोणाकार रेखाओं का प्रयोग

होता है। विद्वानों ने इस लिपि का विकास चार हजार ई0 पू0 माना है। भाषा वैज्ञानिको का कहना है। कि यह लिपि पहले सिन्धु घाटी की लिपि की तरह चित्रात्म्क ही थी परन्तु बेविलोनियॉ में गिली मिट्टी की टिकियों और इटों पर लिखने के कारण यह धीरे–धीरे तिकोनी रेखाओं से युक्त हो गयी।

लिपि

इसे हिरोग्लाइफिक लिपि भी कहते हैं। इस लिपि में अनेक चित्रों का प्रयोग किया जाता है। इसमें कतिपय चित्र विशेष ध्वनियों को व्यक्त करते है। यह चित्रलिपि का ही विकसित रूप है। यदि इस लिपि में लकड़बग्घा लिखना हो तो इसे लकड़ी और बाघ के चित्रों द्वारा प्रकट किया जाता था।

क्रीट लिपि

मिश्र के उत्तर में क्रीट द्वीप के अन्तर्गत पहले दो प्रकार की लिपियॉ प्रचलित थी। 1 चित्रात्मक 2 रेखात्मक यद्यपि ये लिपियॉ क्रीट में विकसित हुई थी। तथापि इन चित्रात्मक लिपि का ही प्रभाव था।

हिटाहाइट लिपि

इसे हिरोग्लाइफिक लिपि भी कहते है। यह लिपि भी मूलतः चित्रात्मक ही थी किन्तु पीछे यह कुछ–कुछ भावात्मक एवं ध्वनात्मक हो गयी इसमें लगभग 419 चिन्ह इसे कभी बायें से दायें और कभी बायें से दायें लिखा जाता था।

सिन्धु घाटी की लिपि

इसकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में मुख्यतया तीन सिद्धान्त हैं।

- द्रविण उत्पत्ति
- सुमेर उत्पत्ति
- असुर उत्पत्ति

द्रवीण उत्पत्ति मूल सिद्धान्त के अग्रकर्ता है। एच0 हेरास तथा जान मार्सल इन लोगों का मत है कि सिन्धु घाटी की सभ्यता द्रविणों की थी और वे लोग उस लिपि के जनक तथा विकास करने वाले थे।

दूसरे मान्यता के विचारकों का कहना है कि सिन्धु घाटी की लिपि द्रविण परिवार से नहीं बल्कि सुमेरी लिपि से उत्पन्न हुई है।

तीसरी मान्यता के समर्थकों का कहना है कि सिन्धु घाटी में पहले आर्य निवास करते थे उन्होने इस लिपि का निर्माण किया था।

यह एक अत्यन्त प्राचीन लिपि है। और इस लिपि के प्राचीनतम नमूने हड़प्पा और मोहनजोदड़ो की खुदाई से प्राप्त हुई।

चीनी लिपि

इस लिपि का विकास मिश्री, सुमेरी एवं सिन्धु घाटी की लिपियों के बाद हुआ। इसके विकास के सम्बन्ध में अनेक किवदन्तियॉ प्रचलित है। चीनी भाषा के विश्व कोष में लिखा है कि त्सं–कॉ ने चीनी लिपि का निर्माण किया था उसने यह लिपि पक्षि के पैरों को देखकर बनायी थी। चीनी लिपि का आरम्भिक रूप चित्र–लिपि के रूप में था। लगभग 5 हजार लिपि चिन्हों का स्मरण रखना रेखओं के भीतर रेखाओं बिन्दुओं का अंकन सहज नहीं।

ध्वनिमूलक लिपि

लिपि के विकास की यह सबसे महत्वपूर्ण एवं कड़ी है। अभी तक जितनी लिपियों का जिक्र हो चुका है। उनमें चिन्हों एवं चित्रों की तो भरमार थी। किन्तु नाम के लिए संकेत अत्यल्प थे। किन्तु घाटी की लिपि इसका अपवाद जरूर है। किन्तु उसमें भी पूर्ण रूप से स्पष्ट नहीं हो पाया फिा भी अन्य लिपियों कि अपेक्षा उपयोगी है। मानव ने जब यह महसूस किया कि चित्रों या विभिन्न चिन्हों से काम चलने वाला नहीं है। तो उसका ध्यान ध्वनि चिन्हों या वर्णों के आविष्कार की ओर गया। ध्वनि मूलक लिपि का विकास भी दो रूपों में हुआ है।

1 अक्षरातमक लिपि 2 वर्णनात्क लिपि

अक्षरात्मक लिपि जिस ध्वनिमूलक लिपि के सभी चिन्ह एक सुर से बोले जाने वाली ध्वनियों के द्योतक होते है। तथा जिसमें एक सक अधिक ध्वनियॉ आ सकती हैं उसे अक्षरात्मक कहते है।

तात्पर्य यह है कि इस लिपि में चिन्ह अक्षर को व्यक्त करता है ध्वनि की नहीं। नागरी लिपि इसका सबसे उत्तम उदाहरण है। क्योंकि क व्यंज्जन ध्वनि में क+अ दो ध्वनियॉ सम्मिलित है। इसी प्रकार को ध्वनि में भी क+ओ दो ध्वनियॉ सम्मिलित हैं। इन ध्वनियों में पहली व्यंज्जन और दूसरी स्वर हैं अक्षरात्मक लिपि सामान्ययता तो ठीक है वैज्ञानिक दृष्टि से इसमें कमी है।

ध्वनात्मत्य लिपियॉ

लिपि विकास की प्रथम सीढ़ी चित्रलिपि है। अंतिम सीढ़ी ध्वन्यात्मक (वर्णनात्मक) लिपि है। इसमें प्रत्येक चिन्ह एक ही ध्वनि या वर्ण को प्रकट करता है। प्रत्येक वर्ण की स्थिति अलग होती है। इसका सबसे बड़ा उदाहरण रोमन लिपि–

मोहन शब्द को लिजिए MOHAN शब्द इसमें 5 ध्वनियॉ है। इस तरह जहॉ अक्षरात्मक लिपि में मोहन शब्द में 3 अक्षर है। वहीं रोमन लिपि में 5 वर्ण शामिल है। इस तरह ध्वनिमूलक लिपि से अक्षरात्मक लिपि का विकास पहले हुआ है। वर्णनात्मक लिपि का बाद में।

देवनागरी लिपि

नामकरण– ब्राह्मी लिपि से विकसित नागरी लिपि से ही देवनागरी लिपि की उत्पत्ति हुई है। इसके नामकरण के बारे में विद्वानो में बड़ा मतभेद है। कुछ महत्वपूर्ण विचार–धाराएँ इस प्रकार है–(1) कुछ विद्वानो का विचार है गुजरात के नागर ब्राह्मणो में इसका सबसे ज्यादा प्रचार था, इसलिए इसका नाम देवनागरी पड़ा। (2) कुछ विद्वान बौद्धग्रन्थ 'ललित विस्तर' में

उल्लिखित नागरी लिपि से इसका सम्बन्ध बताते हैं। (3) नगरों में प्रचलित होने के कारण इस लिपि का नाम देवनागरी पड़ा। (4) देवनागर चिह्नों से विकसित होने के कारण इसका नाम देवनागरी पड़ा। (5) 'पाटलीपुत्र' को 'नागर' और चन्द्रगुप्त द्वितीय को 'देव' कहा जाता था। उन्ही के नाम पर इस लिपि का देवनागरी नामकरण किया गया। (6) कुछ विद्वानों का विचार है कि काशी को पहले देवनगर कहा जाता था। काशी में इसका सर्वाधिक प्रचार होने के कारण अथवा काशी विद्या का केन्द्र होने के कारण उसी 'देवनगर' के नाम के आधार पर इस लिपि का नाम देवनागरी पड़ गया। जैसे–दक्षिण में नन्दनगर के आधार पर 'नन्दी नागरी लिपि' नाम पड़ा है। (7) डॉ0 धीरेन्द्र वर्मा का मत है कि मध्य युग के स्थापत्य की एक शैली का नाम नागर था, जिसमें चौकोर आकृतियां होती थीं। इस नागरी लिपि के अधिकांस अक्षर भी चौकोर होते हैं। इसी आधार पर इसे नागरी या सम्मान देने के लिए देवनागरी लिपि कहा गया है।

विकास : देवनागरी लिपि का विकास निश्चित रूप से कब और कैसे हुआ यह आज भी विवाद का विषय है। इस लिपि का सर्वप्रथम प्रयोग गुजरात के नरेश जयभट्ट (700–800 ई0) के एक शिलालेख में मिलता है। आठवीं और नवीं शताब्दी में क्रमशः राष्ट्रकूट नरेशों एवं एवं बड़ौदा के ध्रुवराज ने अपने देश में इस लिपि का प्रयोग किया था। विजयनगर और कोंकड़ भी इसके विकास के महत्वपूर्ण स्थान रहे हैं। इसी मत के आधार पर कतिपय विद्वानों की यह मान्यता है कि सर्वप्रथम इसका विकास दक्षिण में हुआ और उसके अनन्तर उत्तर भारत में। ईसा की आठवीं शताब्दी से अठारहवीं शताब्दी तक देवनागरी लिपि मेवाड़ के गुहेलवंशी राजा, मारवाड़ के परिहार राजा, मध्यप्रदेश के हैहयवंशी राजा, राठौर और कल्चुरी नरेशों कन्नौज के गाहरवाड़ और गुजरात के सोलंकी राजाओं में पर्याप्त मात्रा मं प्रचलित रही। वैसे यह लिपि भारत के कई क्षेत्रों में विकसित रही है। उत्तरप्रदेश, बिहार, मध्याप्रदेश, महाराष्ट्र, राजस्थान, गुजरात आदि प्रन्तों से उपलब्ध शिलालेख, हस्तलेख, प्राचीन ग्रन्थ आदि में देवनागरी लिपि ही

अधिक मिलती है। आज तो सम्पूर्ण हिन्दी क्षेत्र की यह एकमात्र अधिष्ठात्री बनी हुई है।

देवनागरी लिपि के गुण, विशेषताएँ अथवा वैज्ञानिकता

1 यह एक व्यवस्थित ढंग से निर्मित लिपि है।

2 ध्वनियों का क्रम वैज्ञानिक है। स्पर्श ध्वनियों के वर्णन में प्रथम वर्ग कंठ्य ध्वनियों का है। और अंतिम वर्ग ओष्ठ्य ध्वनियों का। हर वर्ग में अल्पप्राण ध्वनि के बाद महाप्राण ध्वनिसूचक चिह्न है। यथा– क–ख, ग–घ आदि।

3 प्रत्येक वर्ग की ध्वनियों में पहले अघोष ध्वनियाँ हैं और फिर सघोष। प्रत्येक वर्ग की प्रथम दो ध्वनियाँ अघोष है तथा अंतिम तीन ध्वनियां सघोष हैं, यथा–क वर्ग की अंतिम तीन ध्वनियाँ ग, घ, ङ, च वर्ग की अंतिम तीन ध्वनियाँ ग, घ, ङ, च वर्ग की अंतिम तीन ध्वनियाँ ज झ ञ आदि।

4 प्रत्येक वर्ग में नासिक्य ध्वनि– ङ, ण, न, म उस वर्ग के अंत में हैं।

5 अल्पप्राण और महाप्राण ध्वनियों के लिए यथा सघोष एवं अघोष के लिए अलग लिपि चिह्न हैं– क, ख, ग, घ, ङ।

6 छपाई एवं लखाई के लिए एक ही रूप है। जबकि रोमन लिपि में छोटे और बड़े दो रूप छपाई के हैं और दो लेखन के लिए हैं।

7 स्वरों में ह्रस्व एवं दीर्घ का भेद है तथा स्वरों की मात्रायें निश्चित हैं।

8 प्रत्येक ध्वनि के लिए अलग लिपि–चिह्न हैं।

9 एक ध्वनि के लिए एक ही लिपि चिह्न है जबकि रोमन में एक ध्वनि के लिए एक से अधिक लिपि–चिह्न प्रयुक्त होते हैं। यथा– क सूचक ध्वनि के लिए k (kit) एवं c (cat) ।

10 एक लिपि चिह्न से सदैव एक ही ध्वनि अभिव्यक्त होती है। रोमन में एक लिपि–चिह्न से एक से अधिक ध्वनियों की अभिव्यक्ति यथा c से 'क' एवं 'स' ध्वनियों का बोध होता है– (cat कैट, cent सेंट)।

11 उच्चारण एवं प्रयोग में समानता है, रोमन में ऐसा नही है। यथा उच्चारण 'एच' प्रयोग 'ह'।

12 केवल उच्चरित ध्वनियों के लिपि चिह्न हैं। इसके विपरीत रोमन में अनुच्चरित ध्वनियों के लिए भी लिपि चिह्न हैं। यथा walk, Talk में 'ल' का उच्चरण नहीं होता। किन्तु लेखन में l का प्रयोग होता है।

13 देवनागरी में जो लिखा जाता है। वही उच्चरित होता है। परन्तु रोमन में कतिपय उच्चारण भी होता है। यथा but और put यहॉ u दोनों में है परन्तु एक जगह इसका उच्चारण 'अ' और दूसरी जगह 'उ'। यह असमानता देवनागरी में नहीं है।

14 देवनागरी में दस स्वर चिन्ह, तैंतीस व्यंजन चिह्न, एक अनुस्वार, एक अनुनासिक एवं विसर्ग का चिह्न इसकी सम्पन्नता के प्रमाण हैं जिनमें किसी भी भाषा के ध्वनियों के अंकन की क्षमता है।

देवनागरी के दोष (त्रुटियाँ या वैज्ञानिकता)

देवनागरी में जहां अनेक गुण हैं वहीं वैज्ञानिकता, शीघ्र लेखन, मुद्रण तथा टंकण आदि की दृष्टि से कुछ दोष अथवा त्रुटियाँ भी हैं–

1 यह पूर्ण वर्णात्मक लिपि नहीं है इसलिए इसके वैज्ञानिक विश्लेषण में कठिनाई उत्पन्न होती है। इसकी लिखावट समय–साध्य है, इसलिए सिघ्र लेखन, मुद्रण एवं टंकण के लिए यह बहुत उपयुक्त नहीं मानी जाती।

2 लिपि चिह्नों में अनेकरूपता भी है। यथा–अः श्र, णः राग, झः , लः ळ।

3 कुछ चिह्नों के रूप समान होने के कारण भ्रम उत्पन्न करते हैं यथा–धः ध।

4 कुछ ऐसे भी चिह्न उपयुक्त होते हैं जिनका उच्चारण आज हिन्दी में हो पाता है और न ही उससे समन्धित ध्वनियाँ हिन्दी में हैं। यथा– ऋ, ऋ, लृ और ष।

5 कतिपय संयुक्त ध्वनि–चिह्न बनावश्यक हैं। यथा– क्ष त्र ज्ञ।

6 र के अनेक रूप हैं (राम, प्रकाश, कृष्ण, धर्म)

7 संयुक्त व्यंजनों की लिखावट भ्रम उत्पन्न करती हैं। यथा 'पर्ची' में 'र' 'च' के पश्चात लिखा जाता है किन्तु उच्चरित 'च' पहले होता है।

8 उच्चारण की दृष्टी से स्वरों की मात्राएँ व्यंजनों के पश्चात लगनी चाहिए, किन्तु वे आगे, पीछे, नीचे और ऊपर लगती हैं यथा जिस, सीमा कुछ, चूहा, जैसा, देश, मोर आदि।

9 स्वर में लिपि चिह्न के अतिरिक्त मात्रा–चिह्नों का प्रयोग ऐसे वयक्तियों के लिए कठिनाई उत्पन्न कर देता है जो हिन्दी सीख रहें है। वे यह नहीं समझ पाते है कि कहाँ स्वर चिह्न का प्रयोग किया जाए और कहाँ स्वर के बदले उसकी मात्रा का चिह्न प्रयोग में लाया जाए।

सन्दर्भ सूची साभार

डा0 राजमणि शर्मा– उाधुनिक भाषा विज्ञान

डा0 भोलानाथ तिवारी– भाषा विज्ञान

डा0 द्वारिका प्रसाद सक्सेना